अध्याय चतुर्थ
अनामिका के काव्य में वैयक्तिक परिप्रेक्ष्य में स्त्री विमर्श

साहित्य का जीवन से अटूट सम्बन्ध होता है। कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। दर्पण की खासियत यह होती है कि वह जैसे का तैसा, जो जैसा है वह वैसा ही दिखाता है और साहित्य में, समाज में जो घट रहा होता है उसको वैसा ही धारण कर लेता है। कालावधि के बाद पाठक या स्रोता जो भी हो उसको बीते समय का यथावत चित्र प्रस्तुत कर देती है। परिवर्तन सृष्टि के क्रम का एक उपक्रम है। जिस प्रकार वृक्ष से पीले पत्ते गिर जाते है तथा कुछ समय बाद हरे पत्ते आ जाते है, ठीक उसी प्रकार आत्मा भी अपने पुराने शरीर को छोड़कर नया शरीर और रूप धारण कर लेती हैं।

प्रत्येक युग की अपनी दृष्टि और सृष्टि होती है। बदलते संदर्भों में जिस दृष्टि का विकास होता है उससे प्रेरित होकर ही साहित्य सृष्टि के नये आयाम प्रस्तुत होते है। कोई भी साहित्य युग- निरपेक्ष नहीं हो पाता है उसके मूल में इतिहास और जीवन, परिवेश और वातावरण तथा परम्परा व प्रगति की नयी भंगिमायें सदैव क्रियाशील रहती है। हिन्दी साहित्य का इतिहास बहुत प्राचीन, समृद्ध तथा वैभवशाली हैं। सृजन यदि अपने समकालीन परिवेश से आंख चुरा लेता है तो वह न तो जीवन्त हो पाता है न ही यथार्थ बन पाता है।

डॉ. प्रवीण सक्सेना 'उजाला' ने अपने आलेख "शाश्वत चिन्तन-नारी का गरिमामय आभामण्डल" में आज की नारी की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखा है- "आज भारतीय नारी उन्नति कर रही है। वह घर के आँगन के दायरे से बाहर निकल कर राजनैतिक, आर्थिक एवं समग्र जीवन के क्षेत्रों में अपना दायित्व निर्वहन का कदम अच्छी तरह जमा चुकी है परन्तु अभी भी उसके व्यक्तित्व में कुछ कमी शेष है जैसे-स्व. श्री ईश्वर चन्द्र विद्यासागर एवं समाज के प्रकाशक राजा राममोहन राय से पहले लड़कियों को कोई पढ़ाता नहीं था एवं पहले लड़कियों की कम उम्र, (बाल

विवाह) में शादी कर दी जाती थी परन्तु यह बुराई समाज के कुछ वर्गों में अभी भी है।

आज वही नारी अनपढ़ एवं कलंक न होकर सर्व दिशाओं को आलोकित करती हुई लिखने पढ़ने लगी हैं। परन्तु उसके व्यक्तित्व में अभी उतना निखार नहीं हुआ जितना की स्वतंत्रता के बाद भारत की नारी से अपेक्षा है।

आज भी सामान्य नारी अपने नाम से नहीं जानी जाती है प्राय: घर के अन्दर सिमटे प्रभावहीन रूप से किसी की बहिन या किसी की बेटी के नाम से जानी जाती है और शादी के बाद वह किसी की पत्नी या किसी की बहू या फिर घरेलू परिचय में लिपट के ही जीवन की इति श्री कर लेती है।

उसी नारी की जब बाल्यावस्था होती है तब उसे कुछ शैशव सीमाओं में बांध दिया जाता है उसी नारी की दूसरी अवस्था (किशोरावस्था) में कुछ अधिक घरेलू सीमाओं में बंधा माना जाता है और शादी आदि दायित्व बटने के बाद तो उस नारी को सिवाय बोझा लादे पशु के अतिरिक्त मानवीय जीवन की बड़ी सत्य अवस्थाएँ स्थापित करने के कुछ भी शेष नहीं रहता। मान्यताओं में भारतीय नारी की दिव्यताओं के बाद जैसे सास-ससुर के पैर दबाना, पति के पैर दबाना, पति के खाना खाने के बाद भोजन करना, पति के उठने से पहले उठना, पति को चाय बना के देना आदि आदि सेवा करना उसके कार्यों जैसे आफिस या दुकान जाने से पहले उनके कपड़े, जूते की साज-सज्जा-सहयोग हेतु तत्पर-तैयार रहना आदि जैसी सीमाओं में इतना अधिक बांध दिया जाता है कि बेचारी एक नारी अपने जीवन में कभी भी खुलापन सामान्य स्वतंत्र हवा में सांस लेना या इच्छा पूर्ण जीवन कभी महसूस नहीं कर पाती है।

असहाय सी बनके कभी कभी नारी जो नहीं करना चाहती है उसे करना पड़ता है। इन्हीं कारणों के बीच कभी-कभी नारी बड़े कठिन-कदम उठा लेती है। यह कठिन कदम जैसे आत्म-हत्या या फिर तलाक या गृहत्याग कर दिशाविहीन होकर चल देना समाज में विवशता लज्जा और अपमान के पथ पर ले जाकर खड़ा कर देता हैं।

समाज की उन्नति की सेवा परायण और सांस्कृतिक संज्ञाओं और व्यक्तियों को ऐसे अवसरों पर प्रकृति से सरल नारी रूप की गरिमामय आभा मण्डल को भारतीय प्राचीनता के अनुरूप मार्ग दर्शन की तरह-तरह की योजनाएँ एवं समय-समय पर लेख देते रहना चाहिये।"1

इस लेख से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री स्वतंत्र भी है परन्तु कहीं कहीं पर परतंत्र भी। यह शायद इस लिये की बहुविवाह की प्रथा का समाप्त होना। जिसके कारण पुरुष अपनी भार्या को यौन शोषण से बचाना चाहता है।

4.1 अनामिका के काव्य में अस्मिता बोध

मैं यह समझता हूँ कि कोई भी धारणा देशकाल और परिस्थितियों से निरपेक्ष नहीं होती। सत्य देशकाल के अन्त:करण में निहित होकर अपनी सार्थकता को सिद्ध करता है। आधुनिक काल में अनेक विमर्श उभरकर हमारे सामने आये। स्वातन्त्र्योत्तर काल में इनकी और अधिक वृद्धि हुई। छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयीकविता, दलित विमर्श, उत्तर आधुनिकतावाद आदि न जाने कितने विमर्श उभरकर साहित्य जगत में अपनी प्राथमिकता दर्ज करा चुके हैं। इसी क्रम में एक विमर्श और साहित्य जगत में चर्चा का विषय बना और वह विषय था स्त्री विमर्श, नारी विमर्श। स्त्री विमर्श के अन्तर्गत नारी मुक्ति, नारी संघर्ष, नारी अस्मिता जैसे प्रमुख बिन्दु बनें। अब आलोचक नारी मुक्ति, नारी संघर्ष को गद्य और पद्य साहित्य में अपनी आलोचना का विषय बनाने लगे। महिला आलोचकों और पुरुष आलोचकों के बीच एक जंग का ऐलान हो गया। लेखिकाएं कहती हैं कि स्त्री के दर्द को, संवेदना को पुरुष नहीं समझ सकते। ऐसी ही एक समस्या दलित विमर्श को लेकर भी चली।

स्वातन्त्र्योत्तर कालीन नारी ने परम्परा और आधुनिकता के दोहरे दबाव को महसूस किया। निजी रूप में भी और सामाजिक रूप में भी। स्टेनडाल ने कहा है कि- "स्त्री विलक्षण बौद्धिकता को लेकर जन्मती है, वह समाज के स्वार्थ में खत्म हो जाती है। सच्चाई तो यह है कि कोई जीनियस होकर नहीं जन्मता, वह जीनियस हो जाता है और स्त्री की परिस्थिति तो ऐसी है, जो उसे कुछ बनने नहीं देती।"2

नारी अस्मिता का प्रश्न अनेक आयामी है। व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया में नारी की चेतन मन की संकल्पनात्मक भूमिका और अवचेतन मन की इच्छा शक्ति होती है। मानव समुदाय का आधा हिस्सा होते हुए भी नारी की स्थिति समाज में एक इकाई के रूप में नहीं है।

नारी अस्मिता को अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मतों से व्यक्त किया है। आशारानी बोहरा का मत है कि- "परम्परा से पितृसत्तात्मक समाज में पुरुष का प्रभुत्व रहा है, तो उसके सामने संपन्नता, आत्मविश्वास अर्जित करने, अपनी पहचान बनाने के अधिक अवसर रहे। इसलिए अपनी अस्मिता स्थापित करने के भी। व्यक्तिगत अस्मिता ही तो फिर जातिगत अस्मिता बनती है। इसलिए जातिगत रूप में पुरुष का सर्वोत्तम बाहरी असुरक्षित क्षेत्र में व्यक्त हुआ, नारी का अधिकतम घर के सुरक्षित क्षेत्र में। पुरुष कर्मठ बना, नारी कुंठित हुई। इसलिए दोनों को एक दूसरे की समान जरूरत रहते हुए भी समूह रूप में एक जाति अपने अहं की चेतना से मंडित हुई, दूसरी अपनी आंतरिक व आरोपित हीनभाव से खण्डित होती रही।"[3]

मनुस्मृति में नारी के प्रति आदर दिखाई पड़ता है-

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।

यत्रौतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया।"

मनुस्मृति काल से भक्तिकाल तक आते-आते नारी की स्थिति में आमूलचूल परिवर्तन हुआ। तुलसीदास की निम्न पंक्तियाँ इसका उदाहरण है-

"कत विधि सृजी नारि जग माहीं।

पराधीन सुख सपनेहु नाहीं।"

"अस्तित्व की अस्मिता के प्रति जागरूकता ने ही अस्तित्व की निरर्थकता की अवधारणा को जन्म दिया हैं। ज्यों-ज्यों सामन्ती समाज का ह्रास हुआ, पूँजीवाद का जन्म हुआ, वैयक्तिक चेतना में एक तीव्र ज्वार आया। इस ज्वार में जीवन के पुराने मूल्य टूटने लगे, सामूहिक परिवार ध्वस्त होने लगे, व्यक्ति अकेला होने लगा।"4

अनामिका ने नारी अस्मिता को लेकर अनेक कविताओं का सृजन किया हैं। एक नन्हीं सी लड़की अपनी कलाइयों में रंगबिरंगी चूड़िया पहनने का सपना देखती हैं। सपना परिस्थितियों के कारण पूर्ण न हो सका और उसे वेश्यावृत्ति करने पर मजबूर किया जाता है। भूख और गरीबी के कारण वह वेश्यावृत्ति के लिए तैयार हो जाती हैं।

''एक दिन आऊँगी मैं टी.वी. पर

एक अंगूठे की तरह दिखाऊँगी देह-

छूर से।

काया जब छाया की माया बन जाएगी,

ललकारूँगी शोहदों को जब

''आ बैल, मुझे मार, हिम्मत है तो आजा

मरीचिका पी, अरे हिरने पीके दिखा

दौड़ मेरे पीछे, दौड़ हॉफ, मर-खप जा।"[5]

पौराणिक काल में स्त्रियों की जो स्थिति थी वह आज के परिवेश में नहीं है। नारी की स्थिति का वर्णन करते हुए अनामिका कह उठती है-

''पढ़ा गया हमको

जैसे पढ़ा जाता है कागज

बच्चों की फटी कापियों का

चना जोर गरम के लिफाफे बनाने से पहले!

देखा गया हमको

जैसे कि कुफ्त हो उनींदे

देखी जाती है कलाई घड़ी

अलसुबह अलार्म बजाने के बाद।"[6]

नारी अपनी अस्मिता अपने वजूद को आज भी खोज रही है। घर-गृहस्थी के तमाम चक्करों में पड़ी वह अकेले सोचती रहती है।

“क्या खुद मैं अपनी पड़ोसिन हूँ?

क्या मैंने खुद से की है नमस्ते?

क्या मेरे दो हाथ जुड़े है कभी

अपने भीतर के उस ‘मैं' की खातिर।"[7]

समाज में आज भी ऐसी स्त्रियाँ है जो अपने पति को ईश्वर के समान मानती है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं होता है कि उन स्त्रियों का सांस लेने के लिए भी अपने पति से इजाजत लेनी पड़ेगी। अनामिका कहती है-

“वे कहते है और कहते है ठीक

अपनी औकात जाननी चाहिए,

पैर उतने पसारिए

जितनी लंबी सौर हो।"[8]

आज का समाज मुफ्तखोरी का समाज बन गया है। उसी तरह स्त्रियाँ काम भी खूब ज्यादा करें और गाली भी खूब पायें। इसी सन्दर्भ में अनामिका लिखती है-

“खाये ही जाती है,

शाम से सुबह तक

खूब मिर्चीदार गालियाँ

ऊपर से थप्पड़, घूँसे, ताने बोनस में

बाई वन गेट वन फ्री

और ज्यादातर तो सैम्पल में मुफ्त बटी

बस यों ही।"[9]

नारी जीवन अस्तित्वहीन जीवन है, उसका अपना कोई बजूद नहीं है। यह दर्द अनामिका ने व्यक्त करते हुए कहा है-

“मैं कैसेरॉल की अन्तिम रोटी हूँ।

कैसेरॉल में ही बन्द रही हूँ अब तक।"[10]

आज नारी को घृणा भरी दृष्टि से देखा जा रहा है। भूमण्डलीकरण का यह प्रभाव है कि नारी देवी, बहन, माता के स्थान पर आज माल और आइटम बन गयी है। अनामिका इस दूषित माहौल में शुद्ध हवा की कामना करते हुए कहती है-

“उस हिस्से-इस हिस्से के बीच

लेकिन बचा हुआ अब तक

एक पुल-धूल-हवा और कविता का।"[11]

स्त्री की सामाजिक स्थिति मात्र रसोई घर तक ही सीमित है। वह चाहे जितना पढ़-लिख जाये। अन्ततः विवाह के बाद सास, श्वसुर, देवर, जेठ, जेठानी, ननद और पति के इर्द-गिर्द घूमती नजर आती हैं। अनामिका रसोई को नया अर्थ देते हुए उसके बीच मुक्ति और आजादी से जीने की चाह रखती है। यथा-

“वह रोटी बेलती है जैसे पृथ्वी

ज्वालामुखी बेलते हैं पहाड़।

भूचाल बेलते हैं भाटे समुन्दर

रोज सुबह सूरज में,

एक नया उचकुन लगाकर

एक नई थाह फेंककर

वह रोटी बेलती है जैसे पृथ्वी।"[12]

भारतीय सामाजिक व्यवस्था की मूल भूत इकाई घर है। स्त्री अगर घर-गृहस्थी में व्यस्त है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वह चुपचाप है, शान्त है, मूक है-

"अभी मुझे घर की उतरनों का

अनुवाद करना होगा

जल की भाषा में

फिर जूठी प्लेटों को

किसी श्वेत पुष्प की पंखुड़ियों में

अनुवाद करूँगी मैं।"[13]

जब कोई स्त्री घर से बाहर निकलती है। तब उसका चलना सिर्फ एक स्त्री का नहीं अपितु तत्कालीन सभी सन्दर्भों में होता है जिससे वह पहचानी जाती है। स्त्री अस्तित्व बोध को लेकर अनामिका जी बड़ी सजग रूप में नजर आती है।

"औरतों को डर नहीं लगता

कुछ भी कह जाने में, उनको नहीं होती शर्मिन्दगी

मानने में

कि उनमें

पानी और मिट्टी : इन दोनों में से

किसी का

कोई ओर-छोर नहीं होता।

लिखती हैं औरतें

खुद एक धारावाहिक चिट्ठी होती तो है

ईश्वर की

हम सबके नाम।"[14]

हमारी संस्कृति स्त्री को देवी के रूप में मानती है। ऐसा दावा करती है। पर व्यावहारिक जीवन में इसका नामोनिशान तक नहीं दिखाई देता है। "वृद्धाएँ धरती का नमक हैं" कविता में अनामिका ने वृद्ध स्त्रियों की दुखमयी स्थिति का वर्णन किया हैं-

"रहती हैं वृद्धाएं, घर में रहती है,

लेकिन ऐसे जैसे अपने होने की खातिर हो क्षमा प्रार्थी

लोगों के आते ही बैठक से उठ जाती,

छुप-छुपकर रहती है छाया-सी, माया-सी।"[15]

समाज में नारियों को सर्वश्रेष्ठ स्थान दिया गया हैं। नारी को घर की लक्ष्मी माना गया है। नारी पति की अर्द्धांगिनी, सहचरी उसको कन्धों से कन्धा मिलाने वाली सुख-दुख की साथी होती हैं। वह अपना ध्यान नहीं रखती, लेकिन पति के लिए हमेशा समर्पित रहती है। छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद ने कामायनी में कहा है-

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास रजत नग पद तल में।

पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में।"[16]

नारी अस्मिता की परिभाषा किसी निश्चित वैचारिक फ्रेमवर्क के अन्तर्गत नहीं की जा सकती है। नारी अस्मिता के आधुनिक बोध के साथ पुराने बंधन टूटने लगे है। नारी देह का प्रदर्शन, सैक्स की खुली लूट और संचार माध्यमों का स्वच्छन्द भोग की विभिन्न स्थितियों ने अनेक विकृतियों को बढ़ावा दिया हैं।

सिमोन दे बोउवा का यह विश्वास था कि- "औरत के आचरण को एक सही दिशा दी जाये, क्योंकि उसमें सर्वोपरि क्षमता होती है। अपनी क्षमताओं का उचित उपयोग उसे ही करना होगा। अन्यथा अनेक विरोधी मान्यताएं उसकी चेतना को

दिग्भ्रमित कर सकती है। आवश्यकता है कि उसकी नैतिक शक्ति जागरूक रहे। नारी मात्र काम शक्ति संचालित एक निष्क्रिय वस्तु नहीं है, अत: नारी सम्बन्धी धारणाओं का वैज्ञानिक और तर्क संगत आधार होना चाहिए।"[17]

''किसकी नूरजहाँ हूँ मैं?

इस अँधियारे कमरें में यों

टीन खुरचती आटे की।"[18]

समूची मानवता पुरुष जाति की है। ''औरत एक स्वतंत्र प्राणी नहीं है। वह सामान्यतया वही है जो पुरुष तय करता है। पुरुष के सामने वह मूलत: एक 'सेक्सुअल' प्राणी के रूप में प्रस्तुत होती है। पुरुषों के लिए वह सिर्फ सेक्स है और कुछ नहीं।"19 अनामिका के काव्य में नारी अस्मिता के जो स्वर मुखरित हुए है उनमें उनकी व्यक्तिगत जीवन अनुभव का रूप सन्निहित है। दुनिया में प्रदत्त समस्त जीवनानुभवों और पति के द्वारा दिये गये घर-गृहस्थी के तमाम आसरों के अधीन रहती हुई वह अकेली सोचती है- क्या मेरी अपनी कोई धड़कन नहीं?' अनामिका ने प्रत्यभिज्ञा में इन्हीं भावों को पिरोया है-

''क्या खुद मैं अपनी पड़ोसिन हूँ?

क्या मैंने खुद से की है नमस्ते?

क्या मेरे दो हाथ जुड़े हैं कभी

अपने भीतर के उस 'मैं' की खातिर।?"[20]

आज की नारी स्वयं को कितनी ही तेजस्वी, मनस्वी और प्रबुद्ध क्यों न समझने लगी हो, अपनी बौद्धिकता और प्रबुद्धता को स्थापित करने के लिए उसने कितनी ही पुरानी जंजीरों को तोड़ा हो, किन्तु उसकी उपयोगितावादी भूमिका में कोई अन्तर नहीं आया है। समाज में आज भी उसे दोयम दर्जे का नागरिक समझा जाता है, उसका स्थान दलित, शोषित, पिछड़े वर्ग के साथ है और कभी उसे सौन्दर्य की कमनीय प्रतिमा बनाकर आधुनिकता के अलंकरण से लैस किया जाता है और उसे

'उपकरण' में बदल दिया जाता है। जो स्त्री इसका विरोध करती है, अपनी प्रतिभा का प्रमाण देती है, उसे अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। प्रतिद्वन्द्विता और प्रतियोगिता के इस दौर में उसकी क्षमता और स्वाभिमान का मूल्यांकन सामन्ती संस्कारों को ग्राह्य नहीं होता, नारी अस्मिता का संघर्ष यही से शुरू होता है। नारी के स्वयत्व की पहचान, अभिव्यक्ति और सामाजिक यथार्थ के बारे में अनामिका ही लिखती है कि-

"जैसे कि अंग्रेजी राज में सूरज नहीं डूबता था,

इनके घर में भी लगातार

दकदक करती थी

एक चिलचिलाहट।

स्वामी जहाँ नहीं भी होते थे-

होते थे उनके वहाँ पंजे-

मुहर, तौलिए, डंडे

स्टैंप-पेपर, चप्पल-जूते,

हिचकियाँ-डकारें-खर्राटे

और त्योरियाँ-धमकियाँ-गालियाँ खचाखच।"[21]

व्यक्ति निर्माण की प्रक्रिया में नारी की चेतन मन की संकल्पात्त्मक भूमिका और अवचेतन मन की इच्छा शक्ति होती है। एक लम्बी पुरानी स्थापित व्यवस्था को तोड़कर जनसंघर्ष से जुड़ना और कदम-कदम पर यथार्थ से मुठभेड़ करना अस्मिता की पहचान का तकाजा है। नारी जीवन में तिल-तिल मरती है, तो कहीं एक ही बार में जाने के बारे में सोचती है। अनामिका ने नारी के इस जीवन को सजीव रूप प्रदान करते हुए लिखा है-

"एक दिन किसी ने कहा-

कह गए है जूलियस सीजर

कि बहादुर मरता है केवल एक बार,

कायर ही करते है,

बार-बार मरने का कारोबार।

जब तुमने ऐसी कुछ गलती नहीं की,

फिर तुम यों मरी हुई बनकर क्यों लेटी?

तब से उन्हें लगी शरम-सी

रोज रोज मरने में........

एक बार शरमाती, लेकिन फिर कुछ सोचकर

मर ही जाती,

मरती हुई सोचती-

चिड़िया ही होना था तो शुतुरमुर्ग क्यों हुई मैं"[22]

मानव समुदाय का आधा हिस्सा होते हुए भी नारी की स्थिति समाज में एक इकाई के रूप में नहीं है। नारी अस्मिता के बारे में अनामिका आत्मविश्वास के साथ जीने की बात करती है मरना आसान नहीं मानती है-

"साड़ी का फंदा बनाकर लटक जाना पंखे से!

इतना आसान नहीं मरना भी!

पंखे पर धूल जमी है जैसे सदियों की!

फंदा लगा लूँ कि पहले पोंछूँ मैं यह धूल पंखे की

आँचल से?

धूल-धूल माटी-माटी होने के पहले

धूल-माटी पोंछ देने की चिन्ता

एक भोंडा चुटकुला है।"[23]

विभिन्न परिस्थितियों, सामाजिक मान्यताओं द्वारा नारी को अनेक विषमाताओं का सामना करना पड़ता हैं। उन्हें अपने लिये स्वतंत्र जीवन का वातावरण तैयार करने में बहुत संघर्ष करना पड़ता है। "स्त्री की अस्मिता का सवाल, उसके अस्तित्व एवं मनुष्यत्व को स्वीकार करने का सवाल आज मानवता का सबसे बड़ा सवाल है। सदियों से स्त्री की अस्मिता को नकारा गया है और आज भी नाना प्रकार के कुतर्कों से उसे नकारने का प्रयास चल रहा है, कभी धर्म के नाम पर, कभी जाति के नाम पर और कभी वर्ग के नाम पर और यह सब हो रहा है मानवता के आधार पर नहीं, राजनीति के आधार पर।"[24] अनामिका नारी अस्तित्व के रूप को तितली के माध्यम से व्यक्त करते हुए लिखती है-

"ऐ तितली, बोलो तो

कितना है दूर रास्ता

आखिरी आह से

एक अनन्त चाह का?

'चाहिए' किस चिड़िया का नाम है?

यह कभी यह

तुम्हारे आँगन में उतरी हैं?

बैठी है हाथों पर?

फिर कैसे कहते है लोग-

हाथ की एक चिड़िया

झुरमुट की दो चिड़ियों से बेहतर।

मलता हुआ हाथ

सोचता हूँ अक्सर-

क्या मेरे ये हाथ है

दो चकमक पत्थर।"[25]

स्त्री की अस्मिता की लड़ाई स्त्री को मनुष्य का दर्जा दिलाने की लड़ाई है। अभी यह लड़ाई शुरू ही हुई है। अगली सदी इस लड़ाई की ही सदी होगी। गंदी राजनीति ने स्त्री की अस्मिता को सूली पर टाँग दिया है। स्त्री हमारे लिए या तो भोग वस्तु है या क्रय-विक्रय की चीज या राजनीति की शतरंज का एक प्यादा। इसीलिए यदि कोई नारी स्त्री परम्परागत भूमिका के घेरे से बाहर निकलकर कोई उपलब्धि हासिल करती है। तो पुरुष समाज को अवचेतन में ही सही उसे परेशानी होने लगती है।

''खुशियों की, उम्मीद की?

ताकि कुछ लोग तो सवाल करें

वह कैसी थी, कब आएगी फिर?

वह जो कि है ही नहीं-सबसे सुन्दर है :

वृद्धा की कुटिया से अधिक शांत,

नाले की परियोजना से भी ज्यादा उपयोगी

और मृतक की मुस्कान सी अनन्त।

उस डाल की तरह निश्चिंत

जिसका की अन्तिम फल अभी-अभी टूटा।

यह देश भी कैदखाना है,

पर कैदखाने की भी बेहतरी के लिए

करनी है कुछ दौड़-धूप।"[26]

4.2 यौन स्वातंत्र्य स्त्री-

आधुनिक जीवन में आज पुरुष स्त्री के यौन सम्बन्धों में स्वतंत्रता विद्यमान है। जीवन को मशीनीकरण के रूप में जीने वाले स्त्री पुरुष के बीच यौन सम्बन्ध बनाना स्वाभाविक है। आज पति जब घर पर होता है तो पत्नी नहीं और जब पत्नी घर पर होती है तो पति नहीं। ऐसी स्थिति में यौन तृप्ति के लिए किसी अन्य व्यक्ति से यौन सम्बन्ध बनाना कोई गलत नहीं मानने वाले लोग यौन स्वातंत्र्य को सही मानते है। तो कुछ लोग इसे गलत ही मानते है। स्त्री वादी विमर्श में यौन स्वांतत्र्य का मुद्दा बड़े जोर शारे से उठा है। इसी कड़ी में समलैंगिकता शब्द भी सामने आया है। अनामिका ने काव्य में समलैंगिकता को लेकर कुछ नहीं है। किन्तु स्त्री विमर्श का लोकपथ में कहा है- ''वैसे तो अपनी यौन-प्राथमिकताएँ भी होती है, किन्हीं विशिष्ट लोगों का मन अपने लिंग के लोगों से ही स्पन्दित हो पाता है, किन्तु कभी-कभी मजबूरी का नाम भी समलैंगिकता होता है- इसमें कोई शक नहीं। लड़कों/लड़कियों के हॉस्टल, युद्ध के मोर्चे, जेलों और मठ अलग-अलग कारणों से समलैंगिकता का स्कोर (संख्या) बढ़ाते है। कभी-कभी यौन हिंसा की सताई हुई स्त्रियाँ या उपेक्षिताएँ एक-दूसरे के करीब आ जाती है जैसे 'फायर' या 'तिरोहित' में'।'[27]

समलैंगिकता का आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, आत्मनिर्भरता के साथ-साथ स्त्रियों की दैहिक आत्मनिर्भरता प्राप्त करने की कोशिश माना जाता है। इसलिए अनामिका कहती है।-

''''हँसती हुई दिखती है वे

हर ओर

टी.वी में

सारे मुख पृष्ठों/चौराहों पर।"[28]

स्त्री विमर्श का स्त्री यौन स्वातंत्र्य के सभी स्तम्भ उनकी यौन स्वतंत्रता के साथ-साथ देह के प्रश्नों के साथ जुड़ें नजर आते है। मीडिया और फैशन शो ने नारी को शोकेश में लाकर खड़ा कर दिया। आज की आधुनिक नारी किसी भी स्थिति में अपने आप अपने कपड़े उतारने को तैयार है बस उसे फिल्मों और टीवी सीरियलों और पत्रिकाओं के मुख पृष्ठ में स्थान भर मिल जाए।

4.3 स्त्री मुक्ति-

नारी मुक्ति के आधुनिक बोध के साथ ही समस्त पुराने नैतिक बंधन टूटने लगे है। नारी अब देह का प्रदर्शन, सैक्स की खुली छूट और संचार माध्यमों में स्वच्छन्द भोग की विभिन्न स्थितियों ने जहाँ काम विकृतियों को बढ़ावा दिया, वहीं समाज में स्वस्थ सम्बन्धों की संभावना पर भी प्रश्न चिह्न लगा दिया है। आज हमें नारी को परम्परागत घेरे से बाहर निकालकर उसे मानव के रूप में स्थान देने की आवश्यकता है। आज के यथार्थवादी और भौतिकवादी जीवन के बीच संघर्षरत महिलाओं की बौद्धिक मानसिकता का विकास ही करना उद्देश्य मात्र नहीं होना चाहिए। उसे उतना ही सम्मान और आदर देने की भी आवश्यकता है, जिसकी वो हकदार है, और जिससे वह अपने आप को सम्मानित महसूस कर सके।

आज की महिला जागरुक हो चुकी है, शिक्षित हो रही है, स्वावलम्बी हो रही है, वह अपने स्व एवं अस्मिता की तलाश में हैं और उनके जुझारू व्यक्तित्व, आक्रामक तेवर और अनंत की जिजीविषा को उजागर करने का सफल प्रयास किया हैं- ''आज स्त्री ने स्त्री के व्यक्तित्व को नवीन परिप्रेक्ष्य में उभारने का प्रयास किया है। यही प्रयत्न स्त्री विमर्श की नवीन दृष्टि को प्रोत्साहन देता है साथ ही स्त्री विमर्श के विकास की नवीन सम्भावनाओं का एवं भविष्य का भी संकेत कराता है।"[29] क्षमा शर्मा का मानना है कि आजादी स्त्री के सिर्फ पति या पुरुष से नहीं हर किस्म के बन्धन से होनी चाहिए-

''कितना आजाद हूँ मैं

कितनी अनोखी है आजादी

तीन तुच्छ वस्तुओं से मुक्त

मुक्त, ओखली, मूसल और अपने टेढ़े मालिक से

पुनर्जन्म और मृत्यु से मुक्त हूँ मैं

जिसने दबाये रखा था मुझे

वो सब अब दूर फेंक चुका है।"[30]

लेखिका ग्लोरिया स्टेनम के अनुसार- महिलाएँ सिद्ध करें कि उनका स्वतन्त्र अस्तित्व हैं और इस स्थापित तथ्य से इन्कार करें कि वे पुरुषों के बिना कुछ नहीं है। एक सम्पूर्ण सांस्कृतिक क्रांति नीचे से ऊपरी तबकों तक आनी चाहिये, जिसमें स्त्री पुरुष हर व्यक्ति के लिये अपनी जीवन-पद्धति के चुनाव के लिए अनेक विकल्प हों।"[31]

आज का अधिकांश पढ़ा-लिखा विचारशील होने का दावा करता हुआ स्त्री-समाज, स्वतंत्र्य स्त्री समानता और अधिकारों की लड़ाई लड़ता हुआ भी नहीं जानता कि वे अधिकार वस्तुत: क्या हैं, कैसे होने चाहिए, किस रूप में होने चाहिए। महिलाओं को शिक्षित किए बिना उन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ना सम्भव नहीं, महिलाओं को जागृत और सचेत बनाने की प्रक्रिया में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है। ‘‘वास्तव में नारी समाज का आधा हिस्सा और समाज की उन्नति अवनति का मापदंड है। वह साहित्य, संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग है।" वह उच्च मानवीय गुणों और आदर्शों का अजस्र स्रोत हैं। वह पुरुष की प्रेरणा, साथी, मार्गदर्शक, संरक्षक हैं। उसके बिना सृष्टि, सभ्यता, संस्कृति और पुरुष के जीवन में वह स्थान नहीं दिया जाता। जिसकी वह हकदार है। पुरुष प्रधान सनातनी समाज व्यवस्था नारी को सदैव उसके अधिकारों से वंचित रखकर उसे मात्र भोग का साधन बनाती है।"[32] जो वर्तमान सन्दर्भों के उचित मापदण्ड नहीं है। आज भारत वर्ष में नारी को भोगवादी वस्तु के रूप में देखना सामाजिक बदलाव की ओर इंगित करता है।

‘‘हँसती हुई दिखती है वे

हर ओर

टी.वी में

सारे मुखपृष्ठों/चौराहो पर।

पिटकर भी निकली हों घर से

तो जाहिर नहीं होने देती

नए जमाने का घूँघट

हँसी है शायद-

सबके मुँह पर है यह-

एक नए ड्रेसकोड के तहत।

एक अंगूठे की तरह ही

दिखाती है देह

पार टीवी के

वे।"[33]

अनामिका स्त्री मुक्ति आन्दोलन एवं स्त्री साहित्य के सन्दर्भ में किसी भी विशेष आन्दोलन की ओर इशारा नहीं करती है। लेकिन अनामिका के विचार में बहनापा, मानवीयता, अहिंसा, ममता, समन्वयात्मकता हैं। सभी नारीवादियों के महान आशयों का समन्वय हैं उसमें। इसके साथ ही नये प्रजातंत्रीय समाज एवं सत्ता की सृष्टि की ओर इशारा हैं। उसमें सभी उपेक्षित शामिल है।

"रणभेरी इस बार उनकी तरफ से है-

कहती सुनायी देती है-

'आ बैल, मुझे मार-

मृगमरीचिका पी, हिरण

दौड़ थक, हॉफ मर-खफ जा।"

कहती है धुआँधार-

सारी लड़ाई इसी की अगर है

कि बोल देह देह की बोली

टीवी टूट बोल तो रही हूँ

पर आपके सिर के ऊपर से गुजरी हूँ-

अनसमझी बात की तरह

पीहू की रफ्तार में

जाल बिछा ही रह जाएगा क्या भाई

सारे चुग्गे

खुद ही खाएँगे क्या चुनकर

भूखे बहेलिए"

अबला जीवन, हाय तुम्हारी यही कहानी।

मुख पर डारै छोटी सी मुस्कान

सुनो सब आनी-बानी।"[34]

स्त्री मुक्ति आन्दोलन के जरिए ही एक द्‌वंद्‌वरहित समन्वयात्मक धरती को बनाया जा सकता है। यहाँ पुरुष द्‌वारा निर्मित समन्वयीकरण नहीं है। वहाँ केन्द्र में पुरुष है। लेकिन स्त्रीवाद में समाज की सब इकाईयाँ समानधर्मी एवं समान अधिकारिणी हैं। इन सबके कारण अनामिका का स्त्री मुक्ति विमर्श विचार पारिस्थितिक नवीन संदर्भों में पृथक है।

''कपड़ा है देह'........ जीर्णाणि वस्त्राणि' .... वाला

वह श्लोक गीता का सुना था कभी बहुत बचपन में पापा के पेट पर पट्ट लेटे-लेटे

सन्दर्भ यह है कि दादाजी गुजर गए थे,

रो रहे थे पापा धीरे-धीरे

और हल्की हिचकियों से

हिल जाता था जो कभी पेट उनका,

मुझको हिचकाले का आनन्द आता था,

हालाँकि डरी हुई थी मैं यो सबके एकाएक रो पड़ने से,

केवल रुलाते थे-

वे सब भी आज रो रहे है बुक्का फाड़े,

डरी हुई- सहमी हुई थी-

तभी तो यों चिपकी थी पापा से

पसीने से तर उनके उस बनियान की तरह

जो शायद फटी भी हुई थी-

'जीर्णाणि-वस्त्राणि' की लय में!"[35]

कविता मनुष्य की आरंभिक सौन्दर्य बोधात्मक गतिविधि है। इसलिए सचेतन क्रिया है। कविता को मनुष्य की चेतना से पृथक नहीं किया जा सकता, वह चेतना का सृजनात्मक एवं जीवनधर्मी आयाम है। ''सभ्यता का आरम्भ जीवन का आरम्भ था और कविता का आरम्भ जीवन को सुन्दर बनाने का आरम्भ का पर्याय था। तब से आज तक मनुष्य की साँस की तरह, उनकी भूख-प्यास और नींद की तरह कविता चलती रही है। अनवरत एक युग से दूसरे युग तक आदमी की कहानी कहती हुई।"[36]

पुरुष की अपेक्षा स्त्री की छवि में असमानता, उपेक्षा और परतंत्रता का बोध होता है। पर लैंगिक आधार पर स्त्री का पिछड़ापन हमारे जातीय जीवन में हुई बुनियादी चूक को दर्शाता है। इसीलिए कविता में स्त्री के प्रति हुए अन्याय को भी लक्षित किया जा सकता है। अद्‌यावधि, विभिन्न साहित्य में संवेदना और सृजनात्मक कविता के माध्यम से पितृसत्तात्मक समाज द्‌वारा निर्धारित भूमिकाओं की पड़ताल करने का प्रयत्न ही नारी मुक्ति है-

''समझा रहा था कोई उनको

'क्यों रो रहे हो कि

यह देह कपड़ा है,

फटा हुआ कपड़ा बदल देती है आत्मा तो

इसमें रोना क्या, धोना क्या!"

मैं क्या समझी, क्या नहीं समझी-

अब कुछ भी याद नहीं,

अब बस इतना जानती हूँ 'जीर्णाणि-वस्त्राणि' के नाम पर-

कपड़े जब तार-तार होने लगते हैं,

बढ़ जाती है उनकी उपयोगिता!

फटे हुए बनियान बन जाते है झाड़न

और पुराने तौलिए पोंछे का कपड़ा।

फटी हुई साड़ियाँ दुपट्टे बन जाती हैं,

बन जाती है। बच्चों की फलिया।

धोती के कोरों का अच्छा बनता हैं इजारबन्द

कहीं-न-कहीं सबसे मिल जाता है उनका तार-छन्द

जो फटकर तार-तार हो जाते हैं-

सार्वजनिक बन जाती हैं जिनकी निजता!"[37]

अपनी सामाजिक, ऐतिहासिक भूमिका में स्त्री वही करती आयी, जो पितृसत्तात्मक समाज द्वारा निर्धारित किया गया। प्रजनन क्षमता ने उसे निजी सम्पत्ति बनाया, क्योंकि पुत्र पर अधिकार उसी से सम्भव हुआ और सम्पत्ति पर पीढ़ी-दर-पीढ़ी अधिकार सुरक्षित रहा। स्त्री जीवन की सार्थकता पुरुषों द्वारा तय होती रही है और स्त्री इन स्त्रीकृत भूमिकाओं को ही स्वीकारती रही हैं-

"वृद्धाएँ धरती का नमक है,

किसी ने कहा था!

जो घर में हो कोई वृद्धा-

खाना ज्यादा अच्छा पकता है,

पर्दे-पेटीकोट और पायजामें भी दर्जी और रफूगरों के

मुहताज नहीं रहते,

सजा-धजा रहता है घर का हर कमरा,

बच्चे ज्यादा अच्छा पलते हैं

उनकी नन्हीं-मुन्नी उल्टियाँ सँभालती

जगती हैं वे रात-भर

उनके ही संग-साथ से भाषा में बच्चों की

आ जाती है एक अजब कौंध

मुहावरों, मिथकों, लोकोक्तियों,

लोक गीतों, लोकगाथाओं और कथा-समयकों की।

उनके ही दम से

अतल कूप खुद जाते हैं बच्चों के मन में

आदिम स्मृतियों के।"[38]

आधुनिक युग औद्योगिक पूंजीवाद से प्रारम्भ हुआ। विज्ञानसम्मत स्त्रोत व सामाजिक चेतना ने स्त्री शिक्षा पर बल दिया और इसी शिक्षा के सहारे स्त्री की भूमिका वैविध्यपूर्ण हुई। उसे कई संवैधानिक अधिकार प्राप्त हुए, जिनके बल पर उसे एक सामान्य नागरिक के रूप में देखा गया। माँ, बहन, पत्नी, बेटी आदि भूमिकाओं से इतर एक नागरिक की हैसियत उसे प्राप्त हुई। किन्तु क्या सभ्यता और पूंजीवाद के इस भूमण्डलीय समय में क्या उसे वास्तविक समानता स्वतंत्रता भी मिली है। जो वैधानिक रूप में दर्ज है या फिर घर व समाज की दृष्टि अब भी उतनी ही संकीर्ण हैं। यह सच है कि स्त्री शरीर से कोमल, पवित्र व निर्मल, आर्थिक दृष्टि से पुरुष पर निर्भर व स्वभाव से भावुक होने के कारण केवल पुरुष दृष्टि से ही देखती हैं।

“घुल जाती है बच्चों के सपनों में

हिमालय-विमालय की अतल कन्दराओं की

दिव्यवर्णी-दिव्यगंधी जड़ी-बूटियाँ और फूल-वूल।

रहती हैं वृद्धाएँ, घर में रहती हैं

लेकिन ऐसे जैसे अपने होने की खातिर हो क्षमा प्रार्थी ।

लोगों के आते ही बैठक से उठ जाती,

छुप-छुपकर रहती हैं छाया-सी, माया-सी।

पति-पत्नी जब भी लड़ते हैं। उनको लेकर

कि तुम्हारी माँ ने दिया क्या, किया क्या,

कुछ देर वे करती है अनसुना

कोशिश करती है कुछ पढ़ने की,

बाद में टहलने लगती है,

और सोचती है बेचैनी से- 'गाँव गए बहुत दिन हुए।"[39]

अनुशासन, नैतिक और आदर्श के पैमाने स्त्री को परम्परा से चली आ रही भूमिकाओं की ही जकड़ में है। मुँह खोलना तो दूर, अपनी अभिव्यक्ति को काव्यात्मकता देना भी घर समाज में अनुचित लगता है। क्योंकि जर्जरित, रूढ़िबद्ध और यथास्थितिवादी पितृसत्ता स्त्री से उसके सृजनात्मक संघर्ष की प्रेरणा-स्रोत कविता पर भी प्रतिबंध लगाना चाह रही है। आखिर क्यों इस वैज्ञानिक उपलब्धियों से भरे समय में स्त्री असुरक्षित महसूस कर रही है। असुरक्षा के इन कारण तत्वों को खोजने और रूपायित करने में अनामिका ने अपनी कलम के माध्यम से अभिव्यक्त किया है-

''उनके बस यह सोचने-भर से

जादू से घर में सब हो जाता है ठीक-ठाक

सब कहते हैं, 'अरे, अभी कहाँ जाओगी,

अभी तो हमें जाना है बाहर, बच्चों को रखेगा कौन?

कुल मिलाकर देखो सिद्ध हुआ-क्यू.ई.डी.-

कपड़ों की छाती जब फटती हैं-

बढ़ जाती है उनकी उपयोगिता।"[40]

स्त्री प्रकृति की सबसे बड़ी सुन्दर सृष्टि है। उसका जन्म अपमानित होने के लिए, लड़ने के लिए या आँसू बहाने के लिए नहीं हैं बल्कि जीवन का पूर्ण रूप से आस्वादन कर जीवन को सकारात्मक दिशा की ओर ले जाने के लिए है-कितने सार्थक है। आज समाज में स्त्री स्वतंत्रता की बात हम करते है उसका अपना सुनहरा अतीत है। भारतीय स्त्रियों के समक्ष स्त्री स्वतंत्रता अथवा पुरुषों से समानाधिकार की भावना

कोई नयी नहीं बल्कि वे अपनी खोई हुई स्वतंत्रता एवं अधिकारों को पुन: स्थापित करना चाहती है।

"वो इक जमाना था जब लड़कियाँ
खिलाती थीं अष्टदल कमल
गुलाबी रिबन का-
लम्बी सी चोटी के
अगले सिरे पर।
चाकू के भोथरे किनारे से
वे निकाल लेती थी
काजल की नोंके।
मेरा बच्चा
एक पुरानी हिरोइन का
ऐसा काजल देखकर
बोला-
माँ एक दिन तुम लगाना
ऐसा काजल
मली चचा की ऐंठी मूँछों-सा
जोरदार।"[41]

सामाजिक, राजनीतिक समानता व आर्थिक आत्मनिर्भरता के दौर में भी स्त्री का देह, मन और श्रम पर स्वयं का अधिकार नहीं है। किन्तु इस परिदृश्य में भी अनामिका ने स्त्री के प्रति हो रहे शोषण के ढके दबे पक्षों को उजागर कर उसे मुक्त

करना चाहा है। स्त्री की सहजाकांक्षा, स्त्री की भाषा में जितनी अधिक लक्षित होगी, वही उतनी ही मुक्त होगी। अनामिका ने अपनी सृजनात्मक संवेदना से इस विचार को व्यक्त करने का प्रयास भी किया है-

''वो इक जमाना था
जब काफिलें चलते थे रिक्शों के
सिनेमाघरों तक।
हफ्तों बनते थे कार्यक्रम,
होती थी हाँ-हाँ, ना-ना,
फिर चौके के पीठासन से
आते थे फैसले-
'अच्छा, जाओ, मैटिनी शो हो आओ,
पर झुण्ड में जाना
और राह में खाती मत रह जाना तुम सब
शाम तलक-चाट-गोलगप्पे।
बाबूजी के लौटने के पहले तो घर
आ जाना, भाई जरूर,
बाबूजी कराओंगे मेरी भी तुम फजीयत।"[42]

नारी के द्वारा सामाजिक चुनौतियों को स्वीकार करने का लक्ष्य अनेक आयामी हैं। नारी को कभी स्वंतत्र नहीं छोड़ा गया। आधुनिक नारी और उत्तर आधुनिक नारी की छवि में बहुत अन्तर आ चुका हैं।

''लड़कियाँ शरमाती झींकती निकलती थी

शेखर टॉकीज से

पाँच-साढ़े पाँच तक-

''हाय! कैसी आँख से देखते थे दिलीप कुमार!

कैसी आवाज है मेंहदी हसन की-

रंजिश ही सही, दिल की दुखाने के लिए आ वगैरह।

बाद के वर्षों में

इधर-उधर सुनते हुए आनी-बानी,

पिटते हुए धुआँधार

आते थे याद दिलीप कुमार

और मेंहदी हसन-

दिल ही दुखाने के लिए" ....हा.....।

बैंक थे सिनेमाघर

छुट्टे सपनों का होता था वहाँ

एक खाता ऐसा-

जिनको कि कहते हैं बैंकर

स्लीपिंग अकाउण्ट

बरसों तक वह ऑपरेट नहीं होता।

छोटी-सी एक रकम

जिसका की आपको

ध्यान भी नहीं रहता-

करती रहती है

वहाँ आपकी प्रतीक्षा-

चिरवियोगिनी की तरह।"[43]

4.4 भूमण्डलीकरण का प्रभाव-

स्त्री विमर्श भूमंण्डलीकरण बाजार में स्त्री उत्पीड़न ने बहुत शोर के साथ अपनी चर्चा की है। स्त्री के लिए सार्वजनिक स्पेस का संकुचित होना उसके जनतांत्रिक अधिकारों का दमन कहलाता है। लैंगिक अवधारणा स्त्री विमर्श और भूमंडलीकरण का एक प्रमुख आधार माना जा सकता है। प्रभा खेतान ने लिंग की अवधारणा को तीन प्रकार में विभाजित किया हैं-

1. विचारधारात्मक प्रतिनिधित्व और सांस्कृतिक व्यवहार जो रोजमर्रा की जिन्दगी का हिस्सा हैं।
2. असमान सामाजिक सम्बन्ध जो मौलिक जीवन का आधार हैं।
3. सार्वजनिक और निजी का अलगाव एवं उत्पादन तथा पुनरुत्पादन की प्रक्रिया जिनके माध्यम से राजनीतिक पहचान बनती हैं।"[44]

भूमंडलीकरण में उपभोक्ता बाजार के प्रसार में स्त्री की पहचान में होने वाले परिवर्तन की छानबीन भी जरूरी है। बहुराष्ट्रीय बाजार व्यवस्था के कारण यौन वस्तुकरण और राष्ट्रेतर यौन बाजार में स्त्री का जींस की भांति बिकना वास्तव में भारतीय जनतंत्र में एक शोषणकारी परिणाम के रूप में उभरा हैं।

भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने लचीली श्रम व्यवस्था को लागू किया है और उससे स्त्रियों को ज्यादा रोजगार मिलने लगा हैं। श्रम बाजार में स्त्रियों की मांग तो बढ़ी मगर स्त्री को लाभ नहीं हुआ। प्रभा खेतान ने श्रम का स्त्रीकरण चार प्रक्रियाओं के माध्यम से व्यक्त किया हैं।

1. "पुरुषों की तुलना में श्रम के बाजार में स्त्री की बढ़ती हुई भागीदारी।

2. जिस कार्य को पारंपरिक रूप में पुरुष कर रहे हो उसको औरतें करने लगे।

3. घरेलू उद्योग में अदृश्य श्रम शक्ति के रूप में स्त्री की मौजूदगी।

4. उद्योग व्यवस्था में आए हुए परिवर्तन के कारण कम मजदूरी वाले और अनियमित और अस्थायी ठेकों में स्त्री की अधिक नियुक्ति।'[45]

भूमंडलीकरण समाज में स्थिति थोड़ी बहुत बदली है? ऐसा लगता है, बाजार के सामने गृहस्थी ने समझौता कर लिया है। भारत में मध्यमवर्गीय शहरी परिवारों में माता-पिता यह स्वीकारने लगे हैं कि कैरियर के लिए उच्च शिक्षा की आवश्यकता है, अत: विवाह देर से किये जाएँ, बल्कि इन सुविधाओं को देखते हुए गाँव में रहने वाले माता-पिता भी अपनी लड़कियों को शहरों में रखना चाहते हैं। इसका नतीजा है कि पहली बार गाँव से आई हुई लड़की को लगता है कि जिन्दगी जीने का कोई तरीका भी हो सकता है। चाहे जैसी भी स्थिति हो, वह वापस गाँव नहीं लौटना चाहती। किन्तु मैं यहाँ पर आज की परिस्थितियों को देखते हुए कहना चाहूँगा कि कोरोना महामारी के चलते आज अनेक लोग शहरों से पलायन कर गाँवों की ओर लौट रहे हैं। भूमंडलीकरण ने अगर सुविधाएँ मुहैया करायी है तो आज महामारी भी दी है। वास्तव में यह प्रकृति के विरुद्ध किये गये कृत्यों का परिणाम ही है। मेरी बात से सभी सहमत हो यह जरूरी नहीं हैं। किन्तु महिलाओं ने भूमंडलीकरण के नाम पर जो खेल खेला है। वह सराहनीय नहीं कहा जा सकता है।

भूमंडलीकरण ने ही वेश्यावृत्ति को बढ़ावा दिया है। यहाँ पर प्रभा खेतान की एक यौनकर्मी से हुई बात का उदाहरण देखा जा सकता है। थाईलैंड के चांगमाई इलाके की घटना है। जिस होटल में प्रभा खेतान रूकी हुई थी। वहीं एक वेश्या यानि यौनकर्मी भी वहीं रूकी हुई थी। "पहले परिचय में ही उसने कहा- मैं एक यौनकर्मी हूँ, उसके कथन पर मैं चौक गई थी, हँसते हुए उसने कहा-हाँ मेरा पेशा है....।

अच्छा

हो सकता है अलगे दो तीन सालों में मैं अपना पेशा बदल लूँ या फिर इस काम से रिटायर होना चाहूँ।

मगर तुमने यह काम चुना क्यों

अपनी इच्छा से, ज्यादा धन कमाने, मेरे अच्छे ग्राहक हैं। वे मेरी अच्छी कीमत आँकते हैं, भला आते हुए धन को मैं क्यों छोड़नें लगी।"[46]

इस प्रकार भूमंडलीकरण ने नारी को धन कमाने का एक साधन वेश्यावृत्ति के रूप में प्रदान किया। वेश्यावृत्ति अभिप्राय है- ''एक स्त्री की यौन व्यवहार से है, जो वह बाहर या बिना विवाह के व्यापारिक आधार पर संबंध स्थापित करती है। वे वेश्यावृत्ति कहलाती है।'[47] वेश्यावृत्ति धार्मिक और नागरिक समूहों द्वारा वर्जित हैं। राजा-महाराजा, ठाकुर और जमींदार अपने शौक के लिए वेश्यावृत्ति करते थे। उनके पास धन की कमी नहीं थी। मुगल काल में वेश्यावृत्ति को राज्य में बहुत आश्रय मिला। इस काम में रईस वेश्यावृत्ति को अपना शोक समझते थे। किन्तु भूमंडलीकरण ने आज इसे बाजार में धन कमाने का साधन बना दिया हैं। कार्ल गर्ल या सैक्स वकर्स के रूप में आज समाज में इन्हें स्थान मिल चुका है।

वर्तमान समाज में पूँजीवादी वेश्यावृत्ति को अपना शौक समझते थे। बॉलीबुड की फिल्मों में रईसों को वेश्यावृत्ति करते हुए दिखाया जाता हैं। कई नगरों तथा महानगरों में वेश्यावृत्ति उभरकर हमारे सामने आए है। भूमंडलीकरण के कारण आज एक देश से दूसरे देश जाने आने, भ्रमण करने, बिजनेस बढ़ाने या नये उद्योगों को स्थापित करने का उद्देश्य लेकर आने वाले नागरिकों के लिए मेहमान नवाजी का एक नवीनतम प्रयोग है। शयन कक्ष में शय्या पर किसी नारी को भेज देना। आज समाज में वेश्याओं की बढ़ती संख्या गम्भीर विषय बन चुका है। अनामिका ने 'चौदह बरस की कुछ सेक्स वकर्स' कविता में उनकी मनोदशा को वर्णित किया हैं-

''धूप

नन्ही कलाईयों में

झीनी की

सतरंगी चूडियाँ पहनती हैं जब

कहते है गीदड़ की होती है शादी।

गीदड़ भी कितना

रूमानी होगा

जो शादी की खातिर

करता है इन्तजार।"[48]

नारी के जीवन में कितनी भी विषम परिस्थितियाँ क्यों न हो, किन्तु वे धैर्य नहीं खोती। विषम परिस्थितियों में भी हमेशा हँसती ही रहती है-

'हाँ हम हमेशा खुश रहती है!

हँसती हुई दिखती है हम हर ओर-

टी.वी. में सारे मुखपृष्ठों

चौराहों पर।

पिटकर या खटकर या छँटकर भी

निकली हो कही किसी घर से तो

जाहिर नहीं होने देती।"[49]

नारी जहाँ शौक में वेश्यावृत्ति को अपनाती है वहीं दूसरी तरफ भारत जैसे देश में अनेक लड़कियाँ अपनी भूख को मिटाने के लिए इस ओर अपना कदम बढ़ाती हैं। स्त्री भूख और गरीबी के कारण अपने देह बेचने के लिए तैयार हो जाती हैं।

"एक दिन आऊँगी मैं टी.वी. पर

एक अंगूठे की तरह दिखाऊँगी देह-

दूर से

काया जब छाया की माया बन जाएगी

ललकारूँगी शोहदों को जब

'आ बैल, मुझे मार, हिम्मत है तो आजा

मरीचिका पी, अरे हिरने पीके दिखा

दौड़ मेरे पीछे, दौड़-हाँफ, मर-खप जा।"[50]

धनाढ्य व्यक्ति सदैव सौदेबाजी करता आया है। वह आज भी नारी के साथ सौदेबाजी ही करता है। अनामिका ने यौन दासी कविता में लिखा है-

"एक नये आखेट की खातिर

जाते है जब अगले दिन बाहर,

उनके वे टूटे नाखून,

राल-केचुल

एक अजब बहपाने से देखते है मुझे!

मकड़ी के जालों से आती हुई

सूरज की पहली किरण,

पड़ती है बुझी हुई धुनी पर।"[51]

समाज में स्त्री की हालत सभी जगह एक जैसी है। हमारे देश में कई शहर 'जिस्मों की मण्डियाँ' बन गये हैं। मुम्बई का 'कमाठीपुरा' और आगरा में वेश्याओं द्वारा बसाया गया 'ताज नगर' इनके प्रमुख उदाहरण माने जा सकते हैं। ऐसा कोई प्रदेश नहीं जहाँ यह न हो। यौन दासियों की मन:स्थिति का वर्णन अनामिका ने अपने काव्य में किया है-

"एक गुफा है

मेरी नाभि के नीचे!

टपनी ही खूँखारिता से थके

शेर-चीते-अजगर

आते है कुछ देर सोने यहाँ पर!

नये आखेट के खातिर,"[52]

4.5 आशावादिता-

आशावादी दृष्टिकोण रखना ही मनुष्य को विकास-पथ पर अग्रसर करता है। अनामिका जानती है कि व्यवस्था में परिवर्तन करने के लिए जरूरी है स्वयं में परिवर्तन करना और इसके लिए वह मार्ग भी दिखाती है। रियाज कविता में देखें-

''आओ, हम खुश रहने का कुछ रियाज करें-

जैसे सुबह चाय पीते हुए बोले-

'धन्यवाद प्याला, भई आग, धन्यवाद

कितना अच्छा है कि तुम सब हो

और अभी इस वक्त नहीं कोई

हरहर-पटपट, गोला-बारूद, मार-पीट,

गाली-गलौज, डाँट फटकार!

कितना अच्छा है कि जिन्दा है लोग

जुलूस है, जलसे है!"[53]

जीवन निरन्तर चलने वाला है। समय के साथ जीवन के क्षण कम होते चले जाते है, यही जीवन है। अनामिका ने आशावादी जीवन में होना अनिवार्य बताया है। उपर्युक्त कविता में वे आगे कहती है कि-

''बस में चले तो कहे

चिल्लर धन्यवाद!

कितना अच्छा है कि

यहाँ से धकेलेगा नहीं कोई बाहर,

से सकते है हम भी निश्चिंत कुछ देर

खिड़की से सटकर!"

गिरकर उठें तो कहें-घुटनों धन्यवाद

कितना अच्छा है कि

तुम फूटकर भी

फूट नहीं लेते अलग

साथ लगे रहते हो-

जैसे कि घिसटता हुआ बच्चा

अम्मा से पिटकर भी

अम्मा के पीछे ही

अँचरा से पोंछता हुआ

नाक-आँख!"[54]

स्त्री विमर्श केवल स्त्री मुक्ति का ही विमर्श नहीं, मानव की मुक्ति का भी विमर्श हैं। आधुनिक वातावरण में आज लोगों ने कार्यालयों में काम करना कम और बातें करना ज्यादा शुरू कर दिया हैं। वह ऑफिस में जाकर भी अपनी कुर्सी पर नहीं मिलते है। अनामिका ने पूछताछ कार्यालय कविता के माध्यम से इस स्थिति का वर्णन किया है। वास्तव में कार्यालयों को देखकर एक आशा जरूर जाग जाती है कि आज नहीं तो कल काम जरूर हो जायेगा। यथा-

“यहाँ कभी कोई नहीं दीखता!

यह ब्रह्म का ऑफिस है शायद!

ब्रह्मभाव में बैठी होती है खाली सी

बहुत बड़ी कुर्सी,

और लीलाभाव में पसरी होती है

टेबल की धूल

गोचर तो हो सकती है केवल माया ही,

सो गोचर होता है खाली गिलास

और एक टिफिन तीन महल

जिससे लिपटा होता आकुल-व्याकुल सा

पॉलिथिन

मोखो में पंख फुलाकर

सुस्ताने

पाए जाते है सब काम -गुँटर गूँ

कार्यालय भी तो आलय है

काम का घर

और घर में रखना ही चाहिए

घर का माहौल

आलय माने घर और घर में

करें नहीं तो करें कहाँ भला आराम

बेचारे काम

पर देखो-कैसे

अनपूछे प्रश्न बड़ी बेचैनी से

आस-पास टहल रहे है

पूछताछ कार्यालय के-"[55]

भारतीय कार्यालयों का हाल अनामिका की इस कविता में स्पष्ट दिखाई देता है। तो क्या भारत में सभी कार्यालयों के हाल ऐसे ही हैं। शायद हाँ, इसीलिए शायद अनामिका जैसी बड़ी लेखिका को कहना पड़ा-

"पूछताछ कार्यालय में

ऐसे कितने ही अनुत्तरित प्रश्न

मिला रहे है अपनी खोई-खोई आँखें

दीवार पर यों ही

फड़फड़ा रहे

पिछले बरस के कैलेंडर से!

खाली कमरे में पंखा तो बस कैलेंडर की ही खिदमत में

है खुला हुआ!

देख रहा है सब कुछ चुपचाप

पूछताछ कार्यालय

खुली हुई कुंडी पर लटका है

ढाबुस सा ताला!

खोई हुई है

दुनिया के हर ताले की चाबी-

क्या जाने कितनी सदियों से।"[56]

4.6 वैयक्तिक प्रेम

अनामिका की कविताओं में स्त्री विभिन्न रूपों में दिखाई गई है। स्त्री की जिन्दगी, मनोदशा, उसकी स्थिति का सम्पूर्ण चित्र वह खीचती चली जाती है। प्रेम को सभी मानव चाहते है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रेमकाव्य का नाम आते ही ध्यान सूफी काव्य की ओर चला जाता है हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्यकाल का पूर्वार्द्ध इस काव्य परम्परा का द्योतक है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतीय प्रेम पद्धति का आदर्श राम -सीता के विवाहोपरान्त प्रेम की व्यंजना मानी है। वस्तुत: प्रेमकाव्य, प्रेमाख्यान काव्य, प्रेममार्गी शाखा, प्रेम कथानक काव्य आदि नामों से इसे अभिहित किया गया। इन काव्यों में प्रेम तत्व की प्रमुखता ही सर्वोपरि है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी ने प्रेम काव्यों पर फारसी मसनबी शैली का प्रभाव माना है परन्तु यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि प्रेम-चित्रण भारतीय परम्परा में प्रचुर परिणाम में उपलब्ध है। प्रेम क्या है इसका एक टूक उत्तर देना असम्भव है। दो वर्णों के छोटे से शब्द रूप को परिभाषा के सीमित दायरे में नहीं बाधा जा सकता है। प्रेम वस्तुत: अनुभूति का विषय है, अभिव्यक्ति का नहीं। यह वर्ण भेद रहित भिन्नार्थक और नाना रूपी है। यह बहुरूपिया तो नहीं बहुरूपी अवश्य है। विद्वानों और पण्डितों ने इसे परिभाषित करने की चेष्टा की हैं। किसी ने प्रेम कहा, किसी ने प्रणय कहा, तो किसी ने स्नेह किसी ने वात्सलय कहा, तो किसी ने श्रृंगार। साधारण शब्दों में लोभविहीन आसक्ति को प्रेम कहते है। सौन्दर्य एक ऐसी भाव दशा है जो हमें अनुभूति के द्वारा आहलादित करती है। बिना अनुभूति के इसके प्रत्यक्षीकरण को वे असम्भव मानते है।

वैयक्तिक चेतना से सामाजिक चेतना और राजनीतिक चेतना का विकास होता हैं। वस्तुत: 'चेतना' में बोध, भाव एवं कर्म की समन्विति रहती है। चिन्तन, अनुभूति और कर्म की प्रक्रिया इनका प्रसार और विकार ही चेतना है। बौद्धिक सक्रियता

(चिन्तन) भावनात्मक सक्रियता (अनुभूति) और दैहिक सक्रियता (कर्म) को कसौटी मानकर ही चेतना का निर्धारण होता हैं।

प्रेम काव्य का उन्नत स्वरूप हिन्दी साहित्य की प्रेममार्गी शाखा से ही उपस्थित होता है किन्तु यदि हम रामायण में चित्रित दाम्पत्य भावना के अतिरिक्त अन्य भारतीय काव्यों में वर्णित प्रेम के स्वरूप पर विचार करें तो अनेक ऐसे उदाहरण मिलेगें जिनमें स्वच्छन्द प्रेम या रोमांस का चित्रण स्पष्ट रूप से हुआ है। यथा ऋग्वेद के उर्वशी पुरूरवा में, महाभारत के नल-दमयन्ती, तत्वसंवरण प्रकरणों में तथा पौराणिक साहित्य के उषा-अनिरूद्ध, प्रभावती-प्रद्युम्न, कृष्ण-राधा आदि आस्थाओं में ऐसे ही प्रेम का निरूपण हुआ हैं जो विवाह की मर्यादाओं की अपेक्षा चित्र दर्शन, स्वप्न दर्शन, अन्य सौन्दर्यानुभूति से अधिक प्रेरित हैं तथा जिसमें नायिका की प्राप्ति के लिए नायक को भारी संघर्ष या युद्ध करना पड़ा हैं।"[57]

रीतिकाल में नारी को भोग, विलास का साधन माना गया है, लेकिन छायावादी काल में उसे दया, क्षमा, करुणा, प्रेम की देवी का गरिमामयी स्थान दिया गया। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है प्रेम। प्रेम का प्रकाश व्यक्ति के जीवन को आलोकित करता है। स्त्री को प्रेम की प्रतिमूर्ति ही माना गया है। उसका सरल ह्दय हर किसी को सहजता से अपना लेता है। 'प्रेम' शब्द एक अत्यन्त व्यापक शब्द है जो इसके विविध अर्थों की व्याप्ति द्वारा विदित होता हैं। अमरकोषकार तथा सुप्रसिद्ध साहित्यकार आप्टे ने इस शब्द को अनेक सूक्ष्म भावनाओं का वाहक बताया है।"[58]

अनेक विद्वानों ने प्रेम को परिभाषित करने का प्रयास किया है। यहाँ कुछ विद्वानों की परिभाषाएँ देखते हैं-

प. रामचन्द्र शुक्ल के मतानुसार- "विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के प्रति होने पर लोभ वह सात्विक रूप प्राप्त करता हैं जिसे प्रीति या प्रेम कहते है।"[59]

अनामिका ने स्त्री की प्रेम की शक्ति और उसके विस्तार को बहुत ही गहराई से महसूस किया है। नारी सदैव आत्मविश्वास से अंलकृत रहती है। अपने प्रेम में, अपने प्रेम के प्रति-

"अब उसकी हुई गिरफ्तारी

पेशी हुई खुदा के सामने

कि इसी एक जुँबा से उसने

तीन-तीन लोगों से कैसे यह कहा-

सबसे ज्यादा तुम हो प्यारे यह तो सरासर है धोखा-

सबसे ज्यादा माने सबसे ज्यादा!

लेकिन खुद से कलम रख दी

और कहा-औरत है उसने यह गलत नहीं कहा।"[60]

स्त्री बस इतना चाहती है कि उसे भी अपने जीवन में निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त हो-

"और एक दिन किसी मनपसन्द

कौए के

पंखों पर उड़ जाऊँगी

सारी हद-बेहद के पार।"[61]

प्रेम की अनुभूति प्रेममय स्पर्श को अनामिका ने समझा है। और स्त्री हृदय में उठने वाली अव्यक्त भावना को उन्होंने महसूस किया है-

"मुझे ऐसे सहेजकर समेटा उसने

जैसे आँधी में

कपड़े अंकवार लिए जाते है

अलगनी से खींचकर!

मैं सूखा कपड़ा नहीं थी,

मुझमें बहुत बूँदे बाकी बची थी

यह मैंने जाना उसी दिन

उसकी भीगी बाँहें गीले कंधे देखकर।"[62]

प्रेमी-प्रेमिका के परस्पर प्रेम के अतिरिक्त घनिष्ठ मित्रता का यह अहसास देखें जब प्रेमी प्रेमिका को उसके पति के साथ सामंजस्यपूर्ण व्यवहार करने के लिए सुझाव देता हैं-

"तन्मयता से सेवा करना

जैसे मुझसे लड़ लेती थी

देखो उनसे कभी न लड़ना।

कभी जरूरत हो कोई तो

नम्बर रख लो कह-भर देना।"[63]

प्रेमी केवल यही तक सीमित नहीं रहता वह आगे किसी से भी लड़ने को मना करता हैं, और पुनश्च कहता है-

"हँसना-हँसना,

हरदम हँसना,

कसना-कसना

खुद को कसना,

मगर किसी पर गुस्सा हो तो,

मुझ पर ही तुम सिर्फ बरसना,

इतना हक मेरा रहने दो,

गुस्सा तो मुझको सहने दो।"[64]

प्रेम की छोटी-छोटी अनुभूतियों का वर्णन अनामिका जी ने सहज मन से कर दिया। प्रेम के बने बनाये सांचों में सिर्फ नारियाँ ही दमित और शोषित नहीं है कहीं न कहीं पुरुष भी इसका शिकार हुए है। 'एक अजब सा वियोग' कविता में निहित इन भावों को देखा जा सकता हैं-

''लाया हूँ कैमरा, तस्वीरें ले लूँ तुम्हारी?
मेरी पत्नी बेहद खुश होगी
कि मेरी किसी से हुई दोस्ती,
मेरी स्तब्ध वफादारी से
ऊब गई है शायद!
उसकी आँखों में थी
नारियल पानी सी धूप
और कोवलम तट के बालू की
हल्की धमक!''[65]

छोटी छोटी पद्य रचनाओं के माध्यम से जीवन से वे जुड़ती हैं। इसी कविता में एक औरत ने भी अपने प्रेम प्रसंगों को बड़ी सहजता के साथ रखा है। यथा-

''होगा तो यह वियोग ही लेकिन
बिल्कुल नई प्रजाति का
लाल पपीते और कटे टमाटर जैसा
'डिस्को' नहीं इसमें कुछ भी,
किसी कृषि वैज्ञानिक ने
तैयार किए नहीं होगें
इसके बीज

पूसा-वूसा में पर

गैर शास्त्रीय तो यह है ही!

बिन माँगें भी क्या कभी

मिल सकती है माफी?"[66]

4.7 पारिवारिक संबंध

भारतीय समाज में आजादी से पहले संयुक्त परिवार और उनसे सम्बद्ध सामाजिक रीति-रिवाज एक अलग रूप में, अलग मान मूल्यों के साथ स्थापित थे। स्वतन्त्र्योत्तर भारतीय समाज में संयुक्त परिवार की प्रथा में विघटन होना प्रारम्भ हो गया और आज एक परिवार की प्रथा पूर्ण रूप से स्थापित हो चुकी है। लेकिन यत्र-तत्र आज भी संयुक्त परिवार देखने को मिलते है। बदलती हुई सामाजिक स्थिति ने आज नारी शिक्षा और विज्ञान की प्रगति तथा रोजगार के बदलते संदर्भों में परिवार, विवाह स्त्री-पुरुष के संबंध एवं अन्य स्थितियों में बदलाव आया हैं। "औद्योगिकीकरण, शहरीकरण शिक्षा, धर्म निरपेक्षता, भौतिकतावाद एवं ह्रासोन्मुख संयुक्त परिवार प्रणाली ने व्यक्ति, विशेषकर स्त्री दृष्टिकोण में पर्याप्त परिवर्तन ला दिया हैं।"[67]

भारतीय समाज में स्त्री की भूमिका अहम होती है। भारतीय समाज भले ही पुरुष प्रधान हो किन्तु घर की सत्ता हमेशा स्त्री के शासन से ही चलती है। परिवार के रूप में स्त्री और पुरुष की रागात्मक वृत्ति से उत्पन्न होकर अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक सामाजिक संस्था के रूप में स्थापित किया है।

जिस प्रकार अनेक व्यक्तियों के संबंधों की व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न समूहों का नाम समाज हैं। उसी प्रकार परिवार भी ऐसे लोगों का समूह हैं, जिन्हें वैवाहिक सम्बन्ध (पति-पत्नी) तथा रक्त संबंध (मां-बाप और बच्चें, भाई-बहन) एकबद्ध करते हैं। बर्गिस के अनुसार- "समान संस्कृति को ग्रहण करने वाले विभिन्न

संबंधियों से युक्त संघ का नाम परिवार हैं।"[68] अनामिका के काव्य में स्त्री के पारिवारिक रूप में जो स्थान प्रदान किया है उसको यहाँ दर्शाया जा रहा है।

दाम्पत्य जीवन-

संयोग सुखाभिलाषी स्त्री-पुरुष के रूप, गुण-जन्य पारस्परिक आकर्षण से अनायास उत्पन्न मादन-भाव के नैसर्गिक प्रेम को 'प्रणय' कहते है। विवाह आज सम्बन्धों का प्रमाण नहीं रह गया है। स्त्री-पुरुष के बीच निरन्तर एक टकराव है। दाम्पत्य जीवन पति-पत्नी के रूप को धारण किये हुए है। पत्नी को पति से, समाज से क्या-क्या सहना पड़ रहा है। इसका चित्रण अनामिका ने 'पत्नी' नामक कविता में चित्रित किया है-

"टेबल पर लेटी हुई है,
पर लगता है-
खड़ी है किसी जहाज के डेक पर!
अब किसको तंग करुँगा, छेड़ूँगा किसको?
याद आ रहे है हेमिंग्वे।
वर्षों के युद्ध से थका सैनिक।
कैसे करें इससे ज्यादती।"[69]

पत्नी बीमार होकर अस्पताल में मृत्यु से लड़ रही है। फिर भी पति की सोच कितनी अजीब है। दुनिया बदलती जा रही है लेकिन पुरुष की सोच में कोई बदलाव नहीं आया। कोई यह नहीं सोचता कि पुरुष की सफलताओं के नीचे स्त्री दबती चली गई। हाथ में हथियार लेकर पुरुष ने नियम, परम्पराएँ बनाई। स्त्री उसमें सिर्फ शामिल हुई। उसकी अपनी कोई परम्परा नहीं। अपने कोई नियम नहीं।

पत्नी की बहुविध भूमिका नजर आ रही है। कभी उसे तसल्ली से बैठने का समय नहीं मिलता। आज तो ज्यादातर घरों में स्त्रियाँ नव-स्वातंत्र्य के उल्लास में

तिहरे दायित्व को निभा रही हैं। वे नौकरी करती है। गृहस्थी चलाती है। बच्चों को पढ़ा-लिखाकर बड़ा करतीं हैं। यह औरत की नियति बन गई है कि वह मार-पीट करने वालों से भी प्यार करने के लिए अभिशप्त है। दाम्पत्य सम्बन्धों का विघटन आज के जमाने में आम बात हो गई है। पति-पत्नी सम्बन्ध से अभिप्राय है जो पति पत्नी अपने सुख-दु:ख आपस में बाँटते हैं। पत्नी पति की हर इच्छा को पूरा करतीं है। उसे आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती है। पुरुष को ईश्वर मानने वाली स्त्रियाँ आज भी समाज में हैं। वह साँस भी उसकी इजाजत से लेती है। इसी विष में अनामिका ने 'अभ्यागत' कविता में कहा है-

"रोज निकाला जाता है मुझको
रोज केंचुए की तरह
गुड़ी-मुड़ी हो
फैल जाती हूँ फिर से।
वे कहते है और कहते है ठीक-
अपनी औकात जाननी चाहिए
पैर उतने पसारिए
जितनी लंबी सौर हो।"[70]

पत्नी घर में पूरा दिन काम करती है। अपने बच्चों को संभालती हैं। पति का इंतजार करती है। सोचती है कि पति के आने पर उससे बात करूँगी। लेकिन पति परमेश्वर के घर आने पर घर का वातावरण ही बदल जाता है। वह ऑफिस का गुस्सा पत्नी पर उतारता है। उसे गालियाँ देता है। इसी संदर्भ में अनामिका ने "गालियाँ सुन लेने का शील" नामक कविता में कहा है-

"खाये ही जाती है
शाम से सुबह तक

खूब मिर्चीदार गालियाँ

ऊपर से थप्पड़, घूसें, डाँट, ताने-बोनस में

बाई वन गेट वन फ्री

और ज्यादातर तो सैम्पल मुफ्त बटी

बस यों ही।"[71]

माता के रूप में- पारिवारिक संबंध को एक हिस्सा स्त्री का माँ के रूप में होता है। अनामिका ने स्त्री के इस कोमल स्वरूप को भी चित्रित किया है। वह अपनी माँ को संबोधित करते हुए कहती है कि- "माँ आयी है। अब मेरी सारी खुदरा समस्याएँ टिड्डी उड़ी फुर्र, भाव से उड़ती चली जाएगी। घर का और मन का जो भी कोना बेतरकीब, बिखरा-बिखरा पायेगी- धीरज के लगेगी समेटने। अलमारियाँ, बक्से, दिल और दिमाग, सब कुछ चकाचक कर देगीं। धीरज का सहिष्णुता और सदाशयता का 'रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया' है यह माँ मेरी। हाथ से बुने स्वेटर, घरेलू मसाले, घी और छप्पन तरह की मिठाइयाँ, कढ़ी हुई क्या जाने कितनी साड़ियाँ, बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध की बंगाली नायिकाओं जैसे लैसदार ब्लाउज, घर की कई पुरानी किताबें और पांडुलिपियाँ-सब समेट कर हर बार ले आती हैं और जब तक रहती है, सिर झुका कर कुछ-कुछ करती ही जाती है- क्या मैं बन पाऊँगी कभी ऐसी माँ।"[72]

अनामिका ने अपने काव्य में माँ के अनेक रूपों को वर्णित किया हैं। मध्यमवर्गीय परिवार में माँ की स्थिति का वर्णन करते हुए वे कहती है-

"माँ हूँ मैं, मेरे भरोसे ही

बीमार पड़ता है चाँद

जाओ, अब दूध पिलाऊँगी मैं,

सोओ की इसे सुलाऊँगी।"[73]

एक अन्य कविता में माँ को सम्बोधित करते हुए बेटा कहता है-

"माँ, भूख लगी है!

इस सनातन वाक्य में

एक स्प्रिंग है लगा

कितनी भी हो आलसी माँ,

वह उठ बैठती है

और फिर कनस्तर खड़कते है।"[74]

भारतीय संस्कृति में स्त्री को सदैव किसी न किसी की निगरानी में रहना पड़ता है। बचपन में पिता, यौवन काल में भाई और पति और वृद्धावस्था में अपने बेटे का सानिध्य में रहना पड़ता हैं। नारी को किसी युग में अकेला नहीं छोड़ा गया। उसे सदैव संरक्षण प्रदान किया गया है। अनामिका की कविताओं में वर्णित माँ भी अपना जीवन अपने बच्चे के सहारे जीवन गुजारना चाहती है।

"उसके पुकारते ही

दुनिया के सब बन्द दरवाजे धड़ से खुलेगें,

गूँजेगी गिरजे की घंटियाँ।

घट लौट आयेगा घर।"[75]

स्त्री का ममत्व एवं अपनत्व अनामिका के काव्य में इस प्रकार व्यक्त होता है जैसे वह सम्पूर्ण बच्चों के स्नेह और प्रेम को जानती है-

"मेरा ब्लाऊज,

मेरे बच्चे का

गुल्लक है।"[76]

बेटी के रूप में- स्त्री का एक और रूप होता है। जिसे बेटी के नाम से जाना जाता है। लड़कियों को लड़कों की अपेक्षा कम स्नेह और प्यार मिलता हैं। अनामिका ने कहा है-

“राम, पाठशाला जा

राधा, खाना पका

राम, आ बताशा खा

राधा, झाड़ू लगा

भैया अब सोएगा,

जाकर बिस्तर बिछा

अहा, नया घर है

राम, देख यह तेरा कमरा है

‘और मेरा?"

‘ओ पगली'

लड़कियाँ हवा, धूप, मिट्टी होती है

उनका कोई घर नहीं होता।"77

भारतीय समाज में स्त्री को बचपन से ही संस्कारों का अभ्यास कराना प्रारम्भ कर दिया जाता है। अनामिका इस विषय में कहती है-

“मेरी माँ

अक्सर ही सोते में,

मुझको उढ़ा देती है चादर

डर लगता है उसको मेरी

बेपर्दगी से।"[78]

वे आगे कहती है कि-

''माँ को इसकी जल्दी होगी

वे ढंक जाएँ

और इसका होगा संतोष

कि कोई भी जंग ....।"[79]

निष्कर्ष :-

इस प्रकार अनामिका का स्त्री विमर्श उनकी कविताओं में स्त्री के अपने विविध रूपों में उपस्थिति है। नारी जीवन के एकाकीपन से छटपटाती प्रतीत होती है। हमें चाहिए कि हम उनको एक स्वच्छ और स्वस्थ वातावरण तैयार करके दे। अनामिका ही नहीं अपितु अनामिका जैसी अन्य महिला रचनाकारों को प्रोत्साहित करने का भी प्रयास होना चाहिए जिससे उनके मन और मस्तिष्क में क्या चल रहा है समाज के सामने आ सके। नारी जीवन अनेक विषम परिस्थितियों से भरा होता है। उन्हें उनके समाधान खोजने पड़ते है, जो पुरुष द्वारा नहीं खोजे जा सकते है। इसलिए आवश्यक है कि उनकी भावनाओं को समझा जाये और उन्हें उचित सम्मान व आदर मिले।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 प्रवीण कुमार सक्सेना, साप्ताहिक दर्पण, उरई, पृ. 2

2 प्रभा खेतान, सिमोन द बोउवा (स्त्री उपेक्षिता), पृ. 67

3 आशारानी बोहरा, भारतीय नारी अस्मिता और अधिकार, पृ. 1

4 मंजु रुस्तगी, अनामिका का काव्य, पृ. 68

5 डॉ. अनामिका, कविता में औरत, पृ. 124

6 डॉ. अनामिका, खुरदरी हथेलियाँ, पृ. 13

7 डॉ. अनामिका, प्रत्यभिज्ञा, दूब-धान, पृ. 102

8 डॉ. अनामिका, दूब-धान, पृ. 53

9 डॉ. अनामिका, दूब-धान, पृ. 77

10 डॉ. अनामिका, गृहलक्ष्मी, दूब-धान, पृ. 84

11 डॉ. अनामिका, बीजाक्षर, पृ. 26

12 डॉ. अनामिका, अनुष्टुप, पृ. 40

13 डॉ. अनामिका, अनुष्टुप, पृ. 45

14 अनामिका, चिट्ठी लिखती हुई औरत, अनुष्टुप, पृ. 48

15 डॉ. अनामिका, बीजाक्षर, पृ. 32

16 जयशंकर प्रसाद, कामायनी, पृ. 98

17 डॉ. सुदेश बत्रा, नारी अस्मिता हिन्दी उपन्यासों में, पृ. 24

18 डॉ. अनामिका, उड़ान, बीजाक्षर, पृ. 51

19 डॉ. अमरनाथ, नारी का मुक्ति संघर्श, पृ. 41

20 डॉ. अनामिका, प्रत्यभिज्ञा, दूब धान, पृ. 102

21 डॉ. अनामिका, कवि ने कहा, चुनी हुई रचनाएँ, पृ. 18

22 डॉ. अनामिका, कवि ने कहा, चुनी हुई रचनाएँ, पृ. 18, 19

23 डॉ. अनामिका, कवि ने कहा, चुनी हुई रचनाएँ, पृ. 21, 22

24 राजकिशोर (सं.) स्त्री, परम्परा और आधुनिकता, पृ. 36, 37

25 डॉ. अनामिका, कवि ने कहा, चुनी हुई रचनाएँ, पृ. 21, 57

26 डॉ. अनामिका, कवि ने कहा, चुनी हुई रचनाएँ, पृ. 58

27 डॉ. अनामिका, स्त्री विमर्श का लोकपक्ष, पृ. 234

28 प्रो. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, स्त्री : मुक्ति का सपना, पृ. 132

29 डॉ. रामस्वरूप खरे, सं. शोधार्णव, अंक अप्रैल-जून 2014, पूर्णांक 32, पृ. 21

30 क्षमा शर्मा, स्त्रीत्ववादी विमर्श, समाज और साहित्य, पृ. 20

31 आशारानी बोहरा, भारतीय नारी-अस्मिता और अधिकार, पृ. 1

32 डॉ. रामस्वरूप खरे, सं. शोधार्णव, अंक अप्रैल-जून 2014, पूर्णांक 32, पृ. 20

33 प्रो. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, स्त्री : मुक्ति का सपना, पृ. 132

34 प्रो. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, स्त्री : मुक्ति का सपना, पृ. 132

35 प्रो. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, स्त्री : मुक्ति का सपना, पृ. 133

36 डॉ. लखनलाल खरे, हिन्दी भाषा और साहित्य के संवर्धन में महिला साहित्यकारों का अवदान, पृ. 317

37 प्रो. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, स्त्री : मुक्ति का सपना, पृ. 134

38 प्रो. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, स्त्री : मुक्ति का सपना, पृ. 134
39 प्रो. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, स्त्री : मुक्ति का सपना, पृ. 135
40 प्रो. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, स्त्री : मुक्ति का सपना, पृ. 135
41 प्रो. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, स्त्री : मुक्ति का सपना, पृ. 135-136
42 प्रो. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, स्त्री : मुक्ति का सपना, पृ. 136
43 प्रो. कमला प्रसाद, राजेन्द्र शर्मा, स्त्री : मुक्ति का सपना, पृ. 137
44 प्रभा खेतान, बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ, भूमंडलीकरण और स्त्री के प्रश्न, पृ. 65
45 प्रभा खेतान, बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ, भूमंडलीकरण और स्त्री के प्रश्न, पृ. 69
46 प्रभा खेतान, बाजार के बीच : बाजार के खिलाफ, भूमंडलीकरण और स्त्री के प्रश्न, पृ. 120
47 एस.एल. जोशी, भारतीय समाज, पृ. 408
48 डॉ. अनामिका, कविता में औरत, पृ. 124
49 डॉ. अनामिका, दूब धान, पृ. 69
50 डॉ. अनामिका, कविता में औरत, पृ. 124
51 डॉ. अनामिका, दूब धान, पृ. 66
52 डॉ. अनामिका, दूब धान, पृ. 66
53 डॉ. अनामिका, कवि ने कहा, चुनी हुई रचनाएँ, पृ. 114
54 डॉ. अनामिका, कवि ने कहा, चुनी हुई रचनाएँ, पृ. 115
55 डॉ. अनामिका, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 108
56 डॉ. अनामिका, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 109
57 हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. डॉ. नागेन्द्र, पृ. 144
58 'सोहार्द स्नेहे हर्शे, वाचस्पत्य कोश, पृ. 4540
59 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि, भाग-1, पृ. 55
60 डॉ. अनामिका, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 26
61 डॉ. अनामिका, खुरदुरी हथेलियाँ, पृ. 74
62 डॉ. अनामिका, अनुष्टुप, पृ. 13
63 डॉ. अनामिका, समय के शहर में, पृ. 132
64 डॉ. अनामिका, समय के शहर में, पृ. 133
65 डॉ. अनामिका, खुरदुरी हथेलिया, पृ. 81
66 डॉ. अनामिका, खुरदुरी हथेलिया, पृ. 82
67 रोहिणी अग्रवाल, हिन्दी उपन्यास में कामकाजी महिला, पृ. 130
68 डॉ. ओमप्रकाश सारस्वत, बदलते मूल्य और आधुनिक हिंदी नाटक, पृ. 135
69 डॉ. अनामिका, खुरदरी हथेलियाँ, पृ. 43
70 डॉ. अनामिका, दूबधान, पृ. 53
71 डॉ. अनामिका, दूबधान, पृ. 73
72 डॉ. अनामिका, अस्तर की कतरनें, तद्भव, पृ. 73
73 डॉ. अनामिका, दूबधान, पृ. 137
74 डॉ. अनामिका, खुरदरी हथेलियाँ, पृ. 55
75 डॉ. अनामिका, खुरदरी हथेलियाँ, पृ. 7
76 डॉ. अनामिका, अनुष्टुप, पृ. 19
77 डॉ. अनामिका, खुरदरी हथेलियाँ, पृ. 15

78 डॉ. अनामिका, खुरदरी हथेलियाँ, पृ. 37

79 डॉ. अनामिका, खुरदरी हथेलियाँ, पृ. 123